प्रसन्नराघव' में प्रयुक्त सुभाषित पद्य – एक विवेचन

दिव्या शुक्ला*

'प्रसन्नराघव' नाटक सात अंकों में निबद्ध है। इसमें भगवान राम के जीवन से सम्बन्धित सीता–स्वयंवर से लेकर रावण वधोपरान्त हरण की गयी सीता की पुनः प्राप्ति तक की कथा का वर्णन किया गया है। यह नाटक वीर रस प्रधान व पाञ्चाली शैली में रचित है। इसके प्रणेता अलंकारशास्त्र के ज्ञाता व प्रकाण्ड तार्किक विद्वान महाकवि जयदेव है। इनका समय लगभग 1250 ई0 माना जाता है। इनकी प्रमुख विशेषता यह है कि जिस प्रकार इन्होंने कविता–कामिनी को सजा–सँवारकर प्रस्तुत किया है उस प्रकार शायद ही किसी विद्वान ने किया हो –

यस्याश्चोरश्चिकुर निकरः कर्णपूरो मयूरो
भासो हासः, कविकुलगुरू कालिदासो विलासः।
हर्षो हर्षो हृदयवसति, पञ्चबाणस्तु बाणः,
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय।।[1]

'सुभाषित' शब्द 'सु' उपसर्गपूर्वक 'भाष्' धातु से 'इतच्' प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ है। जो सुन्दर, यथोचित व सधे वचन भाषा में प्रयोग किये जाते है, वे सुभाषित कहलाते है या जिसके द्वारा भाषा की सौन्दर्य वृद्धि के साथ–साथ भाव–सम्प्रषेण का सरल व सार्थक माध्यम को सुभाषित कहा जा सकता है।

सुभाषित पद्य या वाक्य किसी भी साहित्य के श्रृंगार का सशक्त साधन है। प्रायः सभी मनुष्य अपने वचन, वार्तालाप भाषण या लेख को प्रभावशाली बनाने हेतु सुभाषित पद्यों या सुक्तियों का प्रयोग करते है। सुभाषित काव्य–रूपी उद्यान के पद्य रूपी पुष्प के सुगन्ध के समान है जिससे सम्पूर्ण काव्य रूपी उद्यान सुगन्धित हो उठता है। ज्ञान व आनन्द का समन्वित सुन्दर रूप सुभाषित पद्य श्रोता व पाठक जनों के बुद्धि व हृदय को सहजता व सरलता से प्रभावित करने में समर्थ होते है। प्रायः काव्य की प्रसिद्धि के साथ प्रभावशाली बनाने में भी सुभाषित पद्यों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। सुभाषितों का जन्म मनुष्य की गहन अनुभूतियों एवं सूक्ष्म निरीक्षण की प्रवृत्ति से हुआ है। जिस व्यक्ति का हृदय जितना अधिक संवदेनशील और बुद्धि जितनी अधिक सूक्ष्म तत्त्वान्वेषिणी होगी, उसके मुख से निसृत वाणी उतनी ही अधिक प्रभावशाली व हृदयस्पर्शी होगी। जीवन के विविध रूपों एवं परिस्थितियों की अनुभूति तो सभी के लिए सम्भव नहीं हो पाता। किन्तु जब किसी सारभूत सुक्ति को सुनकर अपने मन की अभिव्यक्ति जैसा प्रतीत होता है तो मनुष्य उसे अपने मन की अभिव्यक्ति समझकर उस पर मुग्ध हो जाता है और उसे आत्मसात कर लेता है तथा समय आने पर अन्य जनों के समक्ष उसे कह सकता है। ऐसे सुनिबद्ध व सारभूत पद्य या वाक्य सुभाषित का रूप धारण कर लेते है।

सुभाषित पद्यों के महत्त्व को ध्यान में रखकर विद्वान जन प्रायः अपने ग्रन्थों में प्रयोग करते है। महाकवि जयदेव ने भी सुभाषित पद्यों का यथोचित प्रयोग 'प्रसन्नराघव' में किया है। 'प्रसन्नराघव' के

* **शोध–छात्रा, संस्कृत, दी0द0उ0, गो0वि0वि0, गोरखपुर**

'प्रथम अङ्क' में सुभाषित पद्यों का प्रयोग सर्वाधिक किया गया है। उदाहरण रूप में एक पद्य यहाँ उद्धृत करना आवश्यक है जिससे ग्रन्थ की महत्ता स्पष्ट हो जायेगी –

'आकारेणैव चतुरास्तर्कयन्ति परेङ्गितम्।
गर्भस्थं केतकीपुष्पमामोदेनेव षट्पदाः।[2]

अर्थात् भ्रमर सुगन्ध से ही आभ्यन्तर स्थित केतकी–पुष्प को जानते है उसी प्रकार निपुण जन आकार से ही दूसरे के अभिप्राय की तर्कना करते है। तात्पर्य यह है कि जैसे भ्रमर केतकी पुष्प को सुगन्ध के द्वारा जान लेता है कि केतकी पुष्प कहाँ छिपा है उसी प्रकार विद्वान निपुण जन अन्य व्यक्तियों के आकार–व्यवहार से उसके अभिप्राय को समझ लेते है कि अन्य व्यक्ति कैसा है और उसके हृदय में क्या भाव है।

इसी प्रकार एक अन्य सुभाषित पद्य है जिसमें 'नाम' के महत्त्व को बड़े ही सुन्छर ढ़ंग बताया गया है –

'गुणग्रामाऽभिसंवादि नामाऽपि हि महात्मनाम्।
यथा सुवर्णश्रीखण्डरत्नाकर सुधाकराः।।[3]

अर्थात् सुवर्ण श्रीखण्ड, रत्नाकर और सुधाकर के समान गुणयुक्त महानुभावों का नाम भी गुणसमुदाय से विरूद्धार्थ वाला नहीं होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार सुवर्ण, श्रीखण्ड आदि का नाम ही उसके गुण को बताने का सामर्थ्य रखता है उसी प्रकार महान पुरुषों के नाम के श्रवण मात्र से ही उनके गुणों के विषय में ज्ञान होना सम्भव है।

'प्रसन्नराघव' में सुभाषित पद्य का संकलन कवि ने इस चारूता से किया है कि वह कथा के विस्तार के साथ–साथ सन्देश भी पाठक जनों तक सरलता से हृदयगत किया जा सकें, जैसा कि कहा गया है –

सुललितवदनामुदारवृत्तां, कृतिमथवा युवनिं परस्य हृत्वा।
तटमपि परमर्णवस्य गत्वा, वद कतरः सुखभाजनं जनःस्यात्।।[4]

अर्थात् सुन्दर रूपवाली और उदारचरित्र से युक्त दूसरे की रचना की अथवा सुन्दर मुख से युक्त और उदार चरित्र से सम्पन्न दूसरे की स्त्री को चुराकर समुद्र के परवर्ती तट को प्राप्त करके भी कौन सा पुरुष सुख का पात्र होगा? बताओं? कहने का तात्पर्य है कि किसी दूसरे की सुन्दर व उदारचरित्र रचना या किसी की स्त्री को चुराकर कोई भी पुरुष सुख को प्राप्त नहीं कर सकता किसी दूसरे की रचना या स्त्री पर दृष्टि डालने वाला व्यक्ति अधर्मी होता है और वह इस लोक व परलोक दोनों में दण्ड का पात्र होता है।

सुभाषित पद्यों के संकलन की दृष्टि से 'प्रसन्नराघव' का महत्त्व इनके विवेचन से ही स्पष्ट हो जाता है। एक अन्य पद्य द्वारा इस तथ्य को और सरलता से स्पष्ट किया जा सकता है –

वार्ता च कौतुकवती, विमला च विद्या
लोकोत्तरः परिमलश्च कुरंङ्गनाभेः।
तैलस्य बिन्दुरिव वारिणी दुर्निवारः
मेतत्त्रयं प्रसरति स्वयमेव भूमौ।।[5]

अर्थात् कौतुकपूर्ण वृतान्त, निर्मल विद्या तथा कस्तुरी मृग की सुगन्ध ये तीनों जल में पड़े हुए तैल की बूँद के समान है जो स्वतः ही संसार में फैल जाती है। इनके प्रसार के लिए किसी की आवश्यकता नहीं होती, ये अपने अद्भूत गुणों के कारण लोक में स्वतः ही फैल जाते है।

'न ज्ञातुं नाऽप्यनुज्ञातं नेक्षितुं नाऽप्युपेक्षितुम्।
सुजनः स्वजने जातं विपत्पातं समीहते''।।[6]

अर्थात् सुजन, आत्मीय जन पर पड़ी हुई विपत्ति को न जानने की, न अनुमोदन करने की, न देखने की और न ही उपेक्षा करने की इच्छा करता है। कहने का तात्पर्य सुजन अपने आत्मीय जनों के प्रति पड़ी विपत्ति को जानने, उसका अनुमोदन, उस पर पड़ी विपत्ति को देखने व विपत्ति में उसकी उपेक्षा नहीं करना चाहता है। अभिप्राय यह है कि अपनों पर पड़ी विपत्ति के विषय में सज्जन सर्वदा चितिंत रहते है तथा आत्मीय जन को विपत्ति में नहीं देखना चाहते है।

इसी प्रकार एक अन्य सुभाषित पद्य 'प्रसन्नराघव' में है जो महापुरुषों पर आधारित है –

प्रोषितवती रजनिकरे, बन्धुतया न खलु कैरवाण्येव।
म्लायन्ति किन्तु सहसा, भुवनान्यपि तमसि मज्जन्ति।।[7]

अर्थात् चन्द्रमा के अस्त होने पर सौहार्द से कुमुद की म्लान नहीं होते अपितु समस्त लोक ही अन्धकार में सहसा लीन हो जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार चन्द्र के अस्त होने पर केवल कुमुद ही अपनी शोभा नहीं खोता अपितु यह संसार भी अंधकारमय हो जाता है उसी प्रकार महापुरुष पर पड़ने वाली विपत्ति से केवल उनके आत्मीय जन ही दुःखी नहीं होते बल्कि समस्त लोक दुःखमयता का अनुभव करता है अर्थात् महान् पुरुषों की विपत्तियाँ केवल उसे या उसके सम्बन्धियों को प्रभावित नहीं करती अपितु समस्त संसार महापुरुषों पर पड़ी विपत्ति से प्रभावित होता है।

'प्रसन्नराघव' में यत्र तन बड़े ही सुन्दर ढंग से सुभाषित पद्यों का प्रयोग ग्रन्थकार ने किया है। एक सुन्दर पद्य इस प्रकार है –

प्रायो दुरन्तपर्यन्ताः सम्पदोऽपि दुरात्मनाम्।
भवन्ति हि सुखोदर्का विपदोऽपि महात्मनाम्।।[8]

अर्थात् दुरात्माओं की सम्पत्तियाँ भी दुष्परिणाम वाली होती है और महात्माओं की विपत्तियाँ भी शुभ परिणाम वाली होती है। कहने का अभिप्राय यह है कि दुष्टजन चाहे कितनी भी सम्पत्ति अर्जित कर लें किन्तु वे सम्पत्तियाँ उसके लिए अहितकर व विनाश करने वाली होगी। जबकि महान् पुरुषों पर पड़ने वाली विपत्ति भी उनके लिए शुभ फलदायक व यशवान् बनाने वाली होती है।

'प्रसन्नराघव' में ऐसे अनेक पद्य मिलते है जो नीतिज्ञान के साथ ही कल्याण के मार्ग की भी बताने में समर्थ है, ऐसा ही एक पद्य है –

उदर्क भूतिमिच्छद्भिः सद्भिः खलु न दृश्यते।
चतुर्थीचन्द्रलेखेव परस्त्रीभालपट्टिका।।[9]

अर्थात् भविष्य में कल्याण की इच्छा करने वाले सज्जन, परस्त्री की भालपट्टिका को भाद्रशुक्ल की चतुर्थी की चन्द्ररेखा की तरह नहीं देखते है। तात्पर्य यह है कि जो सज्जन मनुष्य भविष्य में अपना कल्याण चाहते है वे दूसरे पुरुष की स्त्री को मस्तक को नहीं देखते, वे उनकी उसी प्रकार उपेक्षा करते है जैसे भाद्रशुक्ल की चतुर्थी की चन्द्ररेखा को नहीं देखा जाता, क्योंकि उसे अशुभ माना जाता है।

सज्जन परस्त्री को सम्मान व मातृवत् देखते है। आशय यह है कि परस्त्री को देखना सज्जनों के आचरण के विरूद्ध है व अपकर्ष तथा अकल्याणकारी फल देने वाला होता है। जैसा कि भाद्रशुक्लपद के चतुर्थी की चन्द्ररेखा की बताया जाता है।

इस प्रकार 'प्रसन्नराघव' में सुन्दर व सरस सुभाषित पद्यों का संकलन किया गया, जो व्यक्ति को ज्ञानसम्पन्न बनाते के साथ ही नैतिक चरित्र का विस्तार करने में समर्थ है।

सन्दर्भ–सूची

1. प्रसन्नराघव, 1/22
2. तदेव, 1/4
3. तदेव, 1/5
4. तदेव, 1/17
5. तदेव, 2/2
6. तदेव, 5/2
7. तदेव, 5/5
8. तदेव, 5/49
9. तदेव, 7/1